विषय	हिन्दी
प्रश्नपत्र सं. एवं शीर्षक	**P1: आधुनिक हिंदी कविता-1**
इकाई सं. एवं शीर्षक	**M7: मैथिलीशरण गुप्त और हिन्दी कविता**
इकाई टैग	**HND_P1_M7**

निर्माता समूह	
प्रमुख अन्वेषक	**प्रो. गिरीश्वर मिश्र** कुलपति, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा (महाराष्ट्र) 442001 ईमेल : misragirishwar@gmail.com
प्रश्नपत्र समन्वयक	**प्रो. चित्तरंजन मिश्र** प्रोफेसर, हिंदी एवं भारतीय भाषा विभाग, दीन दयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय गोरखपुर (उ.प्र.) ईमेल : chittranjanmishra@gmail.com
इकाई लेखक	**डॉ कमलानन्द झा** एसोशिएट प्रोफेसर, हिंदी विभाग, सी.एम.कॉलेज, दरभंगा, बिहार ईमेल : jhakn28@gmail.com
इकाई समीक्षक	**प्रो. सूर्यप्रसाद दीक्षित** प्रोफेसर (सेवानिवृत्त), हिंदी विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ (उ.प्र) ईमेल : suryadixit123@gmail.com
भाषा संपादक	**श्री अरुण कुमार त्रिपाठी** प्रोफेसर एडजंक्ट महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा (महाराष्ट्र) 442001 ईमेल : tripathiarunk@gmail.com

पाठ का प्रारूप

1. पाठ का उद्देश्य
2. प्रस्तावना
3. पृष्ठभूमि
4. समकालीन रचना और रचनाशीलता
5. द्विवेदीयुगीन कविता और राष्ट्रीय चेतना
6. गुप्तजी की स्त्री-चेतना
7. मैथिलीशरण गुप्त और हिन्दी काव्य-भाषा
8. निष्कर्ष

1. पाठ का उद्देश्य

इस पाठ के अध्ययन के उपरांत आप -

- द्विवेदी युग के प्रतिनिधि कवि मैथिलीशरण गुप्त की कविता का परिचय प्राप्त कर सकेंगे.
- मैथिलीशरण गुप्त के साहित्यिक अवदान को समझ सकेंगे.
- गुप्तजी की समकालीन हिन्दी कविता की धारा तथा उसकी प्रमुख प्रवृत्तियों को समझ सकेंगे और
- गुप्त जी की कविताओं के वैशिष्ट्य को समझ सकेंगे।

2. प्रस्तावना

मैथिलीशरण गुप्त की काव्य-यात्रा द्विवेदी युग से लेकर छायावाद, प्रगतिवाद तथा नयी कविता तक के दौर में अपने ढ़ंग से चलती रही। लगभग साठ वर्ष की कालावधि और विविधता भरी प्रवृत्तियों से गुजरते हुए भी इनकी काव्य-यात्रा में कोई बड़ा परिवर्तन या मोड़ नहीं दिखता है। हिन्दी के स्वाधीनता आंदोलन से गहरे जुड़े कवियों यथा माखनलाल चतुर्वेदी, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', सोहनलाल द्विवेदी तथा रामधारी सिंह दिनकर आदि के साथ गुप्तजी एक महत्वपूर्ण कवि के रूप में आज भी समादृत हैं।

मैथिलीशरण गुप्त की काव्यदृष्टि भारत के अतीत, वर्तमान तथा भविष्य की परिकल्पना एवं रामायण, महाभारत तथा अन्य प्रमुख प्राचीन साहित्य से प्रेरित तथा प्रभावित है। स्वभावतः उनकी रचनाओं में पुनरुत्थानवादी चेतना बराबर सक्रिय रही है। ध्यान देने की बात यह है कि स्वाधीनता आंदोलन से उनका गहरा जुड़ाव तथा वर्तमान की समस्याओं का बोध उनकी चेतना को परंपरावादी तथा प्रगति विरोधी नहीं होने देता। अपनी सांस्कृतिक परंपराओं में आस्था रखने पर भी उन्होंने युगधर्म की कभी उपेक्षा नहीं की। भारतीय संस्कृति के मुखर प्रवक्ता होने के साथ-साथ वे नवीन भारत के राष्ट्रीय कवि भी थे। उनके इन्हीं गुणों को देखते हुए कदाचित आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने अपने इतिहास में लिखा,"गुप्तजी वास्तव में सामंजस्यवादी कवि हैं, प्रतिक्रिया प्रदर्शन अथवा मद में झूमने वाले कवि नहीं। सब प्रकार की उच्चता से प्रभावित होनेवाला हृदय उन्हें प्राप्त हैं। प्राचीन के प्रति पूज्य भाव और नवीन के प्रति उत्साह दोनों इनमें हैं।"

3. पृष्ठभूमि

महावीर प्रसाद द्विवेदी से पूर्व कविता में मुख्यतः श्रृंगार, भगवद्भक्ति एवं देशभक्ति की धाराएं ही महत्त्वपूर्ण थीं। समस्यापूर्ति का अद्भुत आलम था। इस समस्यापूर्ति के लिए कवि गोष्ठियां आयोजित होती थीं। इस तथ्य से इंकार नहीं किया जा सकता कि कविता को लोकप्रिय बनाने में समस्यापूर्ति का बड़ा योगदान रहा है। किंतु जिस तीव्र गति से समय और समाज बदल रहा था, उस भाव-बोध का भार संवहन समस्यापूर्ति से संभव न था। गद्य की भाषा खड़ी बोली के हो जाने के बावजूद भारतेन्दु युग की कविता में ब्रजभाषा का ही वर्चस्व बना रहा। यद्यपि छिटपुट रूप से खड़ी बोली में कविता लिखी जा रही थी, किंतु उसमें काव्य-सौंदर्य का अभाव था। डा. नगेन्द्र संपादित हिन्दी साहित्य के इतिहास के अनुसार, "ब्रजभाषा की माधुरी पर रीझा हुआ इन लोगों का रसिक मन अंत तक खड़ी बोली की काव्योपयुक्तता में अविश्वास करता रहा। सब मिलाकर भारतेंदुकालीन कविता के उपादान सीमित तथा अधिकांशतः पिष्टपेषित थे। इस युग की काव्य भाषा परंपरागत थी। भारतेंदु के बाद भी कुछ समय तक यही स्थिति बनी रही।"

बीसवीं सदी का आरंभ होते- होते परिस्थितियों में बदलाव आया। भक्ति एवं श्रृंगार का पिष्टपेषण लोगों को रास नहीं आ रहा था। नीरस तुकबदियों और समस्यापूर्ति से मन ऊब गया था और ब्रजभाषा का आकर्षण क्षीण पड़ने लगा था।

ऐसे विषम माहौल में साहित्य-क्षेत्र में महावीर प्रसाद द्विवेदी का अविर्भाव होता है। जून 1900 ई. की 'सरस्वती' पत्रिका में उनकी 'हे कविते' शीर्षक एक कविता प्रकाशित हुई। इसमें उन्होंने एकरसता वाली कविता लिखने पर क्षोभ प्रकट किया। उन्होंने आह्वान किया कि ब्रजभाषा छोड़कर नये-नये विषयों पर कविता लिखी जानी चाहिए। सन् 1903 में 'सरस्वती' का संपादक बनने के बाद उन्होंने हिन्दी रचनाशीलता को सर्वथा नयी दिशा की ओर मोड़ दिया। उनके दक्ष और पांडित्यपूर्ण दिशा-निर्देश में अनेक कवि सामने आये। इनमें मैथिलीशरण गुप्त अग्रणी थे। गुप्तजी के अतिरिक्त गोपालशरण सिंह, गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही', लोचन प्रसाद पाण्डेय, अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध', नाथूराम शर्मा 'शंकर' तथा रायदेवी प्रसाद 'पूर्ण' आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। इस युग की कविता में विषय की दृष्टि से वैविध्य एवं नवीनता आयी। द्विवेदीजी तथा उनके सहयोगियों के सत्प्रयास से खड़ी बोली काव्य की प्रधान भाषा बन गयी। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इस युग की कविता में आयी विषय-विविधता को लक्ष्य करते हुए अपने इतिहास में लिखा, "इस नयी धारा की कविता के भीतर जिन नए-नए विषयों के प्रतिबिंब आए, वे अपनी नवीनता से आकर्षित करने के अतिरिक्त नूतन परिस्थिति के साथ हमारे मनोविकारों का सामंजस्य भी घटित कर चले। कालचक्र के फेर से जिस नई परिस्थिति के बीच हम पड़ जाते हैं, उसका सामना करने योग्य अपनी बुद्धि को बनाए बिना जैसे काम नहीं चल सकता, वैसे ही उसकी और अपनी रागात्मिका वृत्ति को उन्मुख किए बिना हमारा जीवन फीका, नीरस और अशक्त रहता है।" गुप्त जी इसी अशक्तता के विरुद्ध काव्य रचना में प्रवृत्त हुए।

4. समकालीन रचना और रचनाशीलता

वरिष्ठ आलोचक कृष्णदत्त पालीवाल ने अपनी पुस्तक 'मैथिलीशरण गुप्तः प्रासंगिकता के अंतःसूत्र' में लिखा है कि अपने युग के साहित्यिक, राजनीतिक, सामाजिक-सांस्कृतिक व्यक्तियों से न केवल उनका गहरा संपर्क रहा है, अपितु बहुतों को उन्होंने काफी दूर तक प्रभावित भी किया है। महादेवी वर्मा, माखनलाल चतुर्वेदी तथा अज्ञेय ने तो मुक्त मन से स्वीकार किया है कि उन्होंने खड़ी बोली काव्य के संस्कार मैथिलीशरण गुप्त से ही लिए हैं। गुप्तजी को ये सभी अपना काव्यगुरु मानते रहे हैं। अतः माखनलाल चतुर्वेदी तथा अज्ञेय से गुप्तजी के काव्य का जो संबंध-सूत्र है, उसे समझने की जरूरत है। इस संबंध-सूत्र के भीतर ही खड़ी बोली कविता की परंपरा और आधुनिकता के सूत्र भी पकड़ में आते हैं। गुप्तजी ने अपनी पूरी शक्ति से खड़ी बोली को काव्य-भाषा के रूप में प्रतिष्ठित ही नहीं किया, बल्कि दिनकर के शब्दों में 'उसे अंगुली पकड़कर पैदल चलना भी सिखाया'- उसे ऐसा दृढ़ आधार दिया कि बाद में प्रसाद, निराला, पंत, मुक्तिबोध और अज्ञेय उसके भीतर जन्म ले सके और नवीन सृजनात्मकता से हिन्दी साहित्य समृद्ध हुआ। ब्रजभाषा के स्थान पर खड़ी बोली की महत्व-प्रतिष्ठा का कार्य केवल भाषा-परिवर्तन तक सीमित नहीं था बल्कि यह पूरे युग की मानसिकता के बदलाव का क्रांतिकारी रूप था। नये युग की नयी ज्ञानात्मक संवेदना-शक्ति को खड़ी बोली ही क्षमता के साथ वहन कर सकती थी, ब्रजभाषा नहीं। ब्रजभाषा के स्थान पर खड़ी बोली की प्रतिष्ठा ने सामन्तवाद के स्थान पर आधुनिक नवजागरण की शक्तियों की प्राण-प्रतिष्ठा की, फिर आजादी की लड़ाई में खड़ी बोली का महत्व उसके उपनिवेशवाद, साम्राज्यवाद तथा व्यक्तिवाद विरोधी तेवर के कारण भी कम नहीं रहा। एक प्रकार से खड़ी बोली ही जनचेतना, जनजागरण और जनविद्रोह की भाषा बनी है। माखनलालजी ने गुप्तजी के खड़ी बोली वाले पक्ष पर विचार करते हुए कहा है कि 'युग उनके कंधों पर चढ़कर आया था।'

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने गुप्तजी की काव्य-दृष्टि की तारीफ करते हुए उन्हें हिन्दी भाषी जनता का प्रतिनिधि कवि घोषित किया "गुप्तजी की प्रतिभा की सबसे बड़ी विशेषता है कालानुसरण की क्षमता अर्थात् उत्तरोत्तर बदलती हुई भावनाओं और काव्य प्रणालियों को ग्रहण करते चलने की शक्ति। इस दृष्टि से हिन्दीभाषी जनता के प्रतिनिधि कवि ये निःसंदेह कहे जा सकते हैं। भारतेंदु के समय में स्वदेश-प्रेम की भावना जिस रूप में चली आ रही थी उसका विकास 'भारत-भारती' में मिलता है। इधर के राजनीतिक आंदोलनों ने जो रूप धारण किया, उसका पूरा आभास

पिछली रचनाओं में मिलता है। सत्याग्रह, अहिंसा, मनुष्यतावाद, विश्वप्रेम, किसानों और श्रमजीवियों के प्रति प्रेम और सम्मान सब की झलक हम पाते हैं।

5. द्विवेदीयुगीन कविता और राष्ट्रीय चेतना

द्विवेदीयुगीन कविता का मुख्य स्वर राष्ट्रीय चेतना का है और इसके प्रतिनिधि हैं गुप्त जी। राष्ट्रीय चेतना की यह परंपरा गुप्तजी को भारतेंदु युग से ही मिली किंतु भारतेंदु युग की राष्ट्रीय चेतना और गुप्तजी की राष्ट्रीय चेतना में अंतर है। गुप्तजी के समय अंग्रेजों का चरित्र पूरी तरह खुल कर सामने आ गया था। उनसे सामना करने के लिए राजनीतिक स्तर पर कांग्रेस की स्थापना हो चुकी थी। राजभक्ति का भारतेंदु युग वाला आंतरिक द्वंद्व यहां समाप्त हो गया था। इसलिए गुप्तजी की कविताओं में राष्ट्रीय नवजागरण के स्वर ज्यादा विकसित, उग्र एवं आक्रामक रूप में दिखलाई पड़ते हैं। कृष्णदत्त पालीवाल के शब्दों में, "मैथिलीशरण गुप्त की कविता भारतीयता के गहरे इतिहास बोध की कविता है। यहां उदासीनता और अंधेरा नहीं है, लाचारी और विवशता नहीं है। चारों ओर जागरण की पदचाप सुनाई देती है। भारतवर्ष की महिमा और गरिमा का स्तवन करती यह कविता जीवन का जयनाद है।"

राष्ट्रीय नवजागरण के लिए गुप्त जी अतीत की मिथकीय दुनिया को संस्कारों एवं सामूहिक स्वप्नों से निकालकर वर्तमान में प्रक्षेपित करते हैं। भारत-भारती लिखने की प्रेरणा चाहे उन्हें हाली के 'मुसद्दस' से मिली हो, किंतु सन 1912 में प्रकाशित इस रचना में राष्ट्र के प्रति उनकी संवेदना अत्यंत मुखर होकर सामने आती है। उस समय हिन्दी में इस तरह की कविता देखने को नहीं मिलती। 'भारत भारती' की भूमिका में गुप्तजी समकालीन हिन्दी कविता के परिदृश्य और उक्त काव्यखंड लिखने का औचित्य निरूपण करते हुए लिखते हैं, "यह बात मानी हुई है कि भारत की पूर्व और वर्तमान दशा में भारी अंतर है। अंतर न कहकर इसे वैपरीत्य कहना चाहिए। एक वह समय था कि यह देश विद्या, कला, कौशल और सभ्यता में संसार का शिरोमणि था और एक यह समय है कि इन्हीं बातों का इसमें शोचनीय अभाव हो गया है। जो आर्य जाति कभी संसार को शिक्षा देती थी, वही आज पग-पग पर पराया मुंह ताक रही है, परंतु खेद की बात यह है कि हम लोगों के लिए हिन्दी में अभी तक इस ढंग की कोई कविता नहीं लिखी गई, जिससे हमारी प्राचीन उन्नति और अर्वाचीन अवनति का वर्णन हो और भविष्य के लिए प्रोत्साहन हो। इस अभाव की पूर्ति के लिए जहां तक मैं जानता हूं, कोई यथोचित प्रयत्न नहीं किया गया। परंतु देशवत्सल सज्जनों को यह त्रुटि बहुत खटक रही है। कुर्री सुदौली के अधिपति माननीय श्रीमान् राजा रामपाल सिंहजी ने हाली के 'मुसद्दस' को लक्ष्य करके एक कविता पुस्तक हिंदुओं के लिए लिखने का मुझसे अनुरोध किया।" इस अनुरोध को पूरा करते हुए गुप्तजी 'भारत भारती' में अपने वैष्णवी संस्कारों, प्रगतिशील भावना और वर्णव्यवस्था के सामाजिक आदर्श की परिकल्पना लेकर उतरते हैं। गुप्तजी का मानना है कि निराशा और अवसाद से राष्ट्रीय चेतना उत्पन्न हो ही नहीं सकती और जब तक देशवासियों के मन में राष्ट्रीय चेतना अंकुरित नहीं होगी, हम ब्रिटिश सत्ता को उखाड़ फेंकने में समर्थ नहीं हो सकते।

6. गुप्तजी की स्त्री-चेतना

द्विवेदी युगीन हिन्दी कविता में नारी के प्रति गहरी संवेदनशीलता के दर्शन होते हैं। आधुनिक युग से पूर्व रीतिकाल के कवियों का मन सिर्फ नारियों के बाह्य सौंदर्य चित्रण में रमा करता था। इसके विपरीत द्विवेदी युग में नारी-शक्ति का संधान पर्याप्त रूप में किया गया है। नारी के प्रति यही उदात्त दृष्टि कदाचित छायावाद में आकर विस्तार पाती है। उस समय नवजागरण के एजेंडे में नारी-दशा प्रमुख थी। नारी विषयक प्रश्नों पर सभी रचनाकार पुनर्विचार की मुद्रा में थे। व्यक्ति स्वतंत्रता की भावना से नारी स्वतंत्रता की भावना को भी बल मिला। राष्ट्रीय आंदोलन में

नारियों ने अपनी शक्ति और सामर्थ्य को समझते हुए पुरुष के समकक्ष बढ़-चढ़ कर हिस्सा लिया। नारी के इस बदले हुए रूप और बदलते विचार का मैथिलीशरण गुप्त पर गहरा प्रभाव पड़ा। उन्होंने इतिहास में उपेक्षित नारी पात्रों को, उनके प्रति गहरी संवेदना प्रकट करते हुए साहित्य में पुनर्जीवित किया। उर्मिला, यशोधरा तथा हिडिंबा जैसी साहित्य में भुला दी गईं स्त्रियों को अद्भुत गरिमा से मंडित कर दिया।

'साकेत' तथा 'यशोधरा' की कथा नायिकाएँ उर्मिला और यशोधरा गुप्तजी की स्मरणीय स्त्री-पात्रों में हैं। उक्त दोनों काव्यों की रचना की प्रेरणा गुप्तजी को रवीन्द्रनाथ ठाकुर के निबंध 'काव्येर उपेक्षिता' नारी तथा आचार्य द्विवेदी के लेख 'कवियों की उर्मिला विषयक उदासीनता' से मिली थी। साकेत में उर्मिला के चरित्र को गुप्तजी ने स्वाभिमानी, जाग्रत, शक्तिरूपा, वीरांगना के रूप में चित्रित करने का प्रयास किया है। उर्मिला के अतिरिक्त साकेत में चित्रित अन्य स्त्री-पात्र जैसे सुमित्रा, मंथरा, कैकेयी आदि के चरित्रों में भी गुप्तजी ने सर्वथा नयी उद्भावनाएं प्रदर्शित की हैं। इस तरह गुप्तजी पारंपरिक स्त्री दृष्टि में सार्थक हस्तक्षेप करते हैं।

श्री प्रभाकर श्रोत्रिय ने मैथिली शरण गुप्त की नारी दृष्टि की फांक को स्पष्ट करते हुए कहा है कि बगैर पुरुषों को कटघरे में खड़ा किए नारी प्रश्न पर विचार संभव नहीं है और गुप्त जी ने भारतीय संस्कृति के रक्षार्थ अपने पूर्व पुरुषों को प्रश्नांकित किया है। इसके बावजूद गुप्त जी को नारीविरोधी की संज्ञा नहीं दी जा सकती। उन्हीं के शब्दों में, "आज जब नारी के व्यक्तित्व की स्वतंत्र प्रतिष्ठा और पुरुषों के समकक्ष उसकी हैसियत स्वीकार की जा रही है, यह लग सकता है कि शील, संयम, उदारता, समर्पण, क्षमा जैसे सांस्कृतिक शब्दों के जरिये न सिर्फ पुरुष द्वारा नारी शोषित हुई है, बल्कि स्वयं नारी ने अपने शोषण को भी स्वीकृति दी है। लेकिन संक्रमण के इस दौर में, जब आधुनिक मूल्यों की पहचान हो रही थी और पारंपरिक मूल्यों को नये संदर्भ दिए जा रहे थे, हम इस अंतर्विरोध को भी विधायक मानते हैं। संस्कृति, परंपरा और इतिहास के सार्थक उपयोग और उसे युगानुरूप प्रासंगिकता देने का सिलसिला शुरू करते हुए, एक खास तरह का द्वंद्व और हिचक होती है। इन सीमाओं के बावजूद गुप्त जी ने विरासत के श्रेष्ठ मूल्यों को पुनर्प्रतिष्ठित करते हुए, नारी के प्रति संवेदना का एक सजीव वातावरण बनाया।

7. मैथिलीशरण गुप्त और हिन्दी काव्य-भाषा

मैथिलीशरणगुप्त को खड़ी बोली हिन्दी काव्यभाषा को सहज, सरल काव्योपयोगी बनाने के लिए कई तरह के झाड़-झंखाड़ साफ करने पड़े। भाषा रूपी ऊबड़-खाबड़ खेत में साफ-सुथरा रास्ता बनाना पड़ा। यह साधारण काम नहीं था। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने गुप्तजी के इस अवदान के महत्व को अपने इतिहास में रेखांकित करते हुए उनकी रचनाओं के भीतर तीन अवस्थाओं का जिक्र किया है। आचार्य शुक्ल लिखते हैं, "प्रथम अवस्था भाषा की सफाई की है जिसमें खड़ी बोली के पद्यों की मसृणबंध रचना हमारे सामने आती है। 'सरस्वती' में प्रकाशित अधिकांश कविताएं तथा 'भारतभारती' इस अवस्था की रचना के उदाहरण हैं। ये रचनाएं काव्यप्रेमियों को कुछ गद्यवत रूखी और इतिवृत्तात्मक लगती थीं। इनमें सरस और कोमल पदावली की कमी भी खटकती थी। बात यह है कि यह खड़ी बोली के परिमार्जन का काल था।" आधुनिक हिन्दी काव्य भाषा का निर्माता यदि किसी को कहा जा सकता है तो वे गुप्तजी ही हैं। इसमें दो राय नहीं कि उन्होंने खड़ी बोली को काव्य की प्रभावी माध्यम भाषा बनाने का भरपूर प्रयास किया। उस समय अधिकांश कवियों तथा लेखकों का यह विचार था कि खड़ी बोली काव्य हेतु उपयुक्त भाषा नहीं बन सकती। गुप्तजी ने इस चुनौती का सामना निष्ठा और दृढ़ता के साथ किया। 'काव्य प्रभाकर' की आलोचना में उन्होंने यह कहा है कि "मेरी अल्प-बुद्धि तो यह कहती है कि अब खड़ी बोली में ही कविता हो सकती है। जिस हिन्दी को हम लोग राष्ट्रभाषा बनाने की कोशिश करें, उसी का साहित्य कविता से खाली पड़ा रहे, यह कितने दुख की बात है।

कविता साहित्य का प्राण है। जिस भाषा में कविता नहीं, वह भाषा कभी साहित्यवादी होने का गर्व नहीं कर सकती और जिस भाषा को साहित्य का गर्व नहीं, वह राष्ट्रभाषा क्या खाक हो सकती है?''

ध्यान देने की बात यह है कि द्विवेदी युग में केवल गुप्त जी ही नहीं, कोई एक दर्जन महत्वपूर्ण कवि खड़ी बोली में कविता कर रहे थे। यद्यपि काव्य-भाषा के निर्माण में इन कवियों का योगदान कम नहीं है, किंतु यह सही है कि काव्य-भाषा के रूप में, खड़ी बोली में एकमात्र गुप्त जी की अडिग आस्था थी। जो कवि गुप्तजी के साथ काव्य रचना में प्रवृत्त थे उनमें से अधिकांश ब्रजभाषा या संस्कृत छंदों या उर्दू प्रभावित शैली में रचनाएं कर रहे थे। द्विवेदी जी द्वारा स्थापित काव्यादर्श में इतनी समर्पणमयी आस्था किसी और की नहीं थी। वर्तमान के अनुकूल जातीय-वृत्त चेतना का ऐसा विराट अन्वेषण और आयोजन भी किसी और ने नहीं किया था। अतः इन तमाम मामलों में अधिकांश तत्कालीन पाठक वर्ग मुख्यतः गुप्त जी पर निर्भर था। वे ही उन्हें सर्वाधिक व्यापक, पूज्य, प्रिय और विश्वसनीय लगे थे। गुप्त जी के इस अवदान को अगली पीढ़ी के कवि बच्चन ने भाव-विभोर होकर स्वीकारा है। उन्होंने कहा है कि जैसे कण्व ऋषि नीचे पड़ी बालिका शंकुतला को अपने घर उठा लाये थे, वैसे ही गुप्त जी ने करुणार्द्र होकर अबोध हिन्दी को वात्सल्य दिया। एक कविता में वे कहते हैं-

"तुतलाने वाली को क्रमशः
गाना गीत सिखाया
औ' घुटनों चलने वाली को
नर्तन कुशल बनाया,
आजीवन साधना उन्हीं की
आज खड़ी बोली जो
युग, देश, प्रकृति, संस्कृति के साज सजाए
मैथिलीशरण थे हिन्दी के हित आये।"

प्रभाकर श्रोत्रिय ने गुप्त जी की काव्य-भाषा की शक्ति और सामर्थ्य की सूक्ष्म पड़ताल करते हुए उनकी काव्य-भाषा में प्रयुक्त सूक्तियों के संदर्भ में लिखा है कि काव्य भाषा का थिरना, तीव्र प्रवाहित होना, या उसका विस्फोट होना कवि के विचार और वस्तु-स्रोत, उनके प्रति कवि के आचरण, अनुभूति और विचार का स्तर-प्रकार वगैरह पर निर्भर करता है। चूँकि गुप्त जी के मन की डोरी मुख्यतः पारंपरिक आदर्शों और मूल्यों से बंधी थी, इसलिए उनकी भाषा लोक व्यवहार की समकालीन भाषा होते हुए भी अपनी जीवनी शक्ति अतीत से लेती थी।

8. निष्कर्ष

कृष्णदत्त पालीवाल के शब्दों में मैथिलीशरण गुप्त के सृजन कर्म में हमारी परंपरा के पुरखे बोलते हैं। कवि का समूचा युग परिवेश काव्य-संवेदना में अधिकाधिक एकाग्र हो जाता है। बीसवीं शताब्दी के भारतीय लोकजागरण को गुप्त जी का संघर्षशील व्यक्तित्व और इतिहास- बोध सृजनात्मकता में मूल स्रोत पर ही पकड़ने के लिए संकल्पबद्ध है। वह हमारी जातीय स्मृति के बहुत बड़े अंश को रचनात्मकता और काव्यात्मकता में ढाल लेते हैं। शायद इसीलिए अपने से बाद के कवियों के लिए वे प्रेरणा और चुनौती दोनों रहे हैं। हम पाते हैं कि हमारे जातीय - सांस्कृतिक इतिहास की प्रखर वैष्णव-चेतना गुप्त जी में नए आलोक के साथ प्रस्फुटित हुई है। गुप्त जी ने अतीत का गौरवगान किया है, किंतु वे अतीतजीवी नहीं हैं। उनकी सृजनात्मकता में अतीत इस तरह स्पंदित और सृजित है- मानो वह वर्तमान ही हो।